जय केसरियानाथजी

म. विनयसागर

धुलेवागढ़ में विराजमान होने के कारण ऋषभदेव धुलेवानाथ कहे जाते है । इस प्रकार केसर की बहुलता के कारण यह तीर्थ केसरियानाथजी के नाम से प्रसिद्ध है । यह तीर्थ अतिशय क्षेत्र / चमत्कारिक क्षेत्र है ।

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शती मे मेवाड़ देश में पाँच तीर्थ प्रसिद्धि के शिखर पर थे - १. देलवाड़ा / देवकुलपाटक (एकलिंगजी के पास), २. करेड़ा /करहेटक, ३. राणकपुर, ४. एकलिंगजी और ५. नाथद्वारा । इसमें से देलवाड़ा और करेड़ा समय की उथल-पुथल के साथ विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त न कर सके और राणकपुर, एकलिंगजी और नाथद्वारा यह तीनों तीर्थ आज भी उन्नति के शिखर पर हैं ।

महाराणा कुम्भा के पूर्व ही धर्मघोषगच्छीय श्रीहरिकलशयति ने मेदपाटतीर्थमाला की रचना की है, किन्तु उसमें कहीं भी केसरियानाथ का उल्लेख नहीं है । केसरियानाथजी की जाहोजलाली १९वीं-२०वीं शताब्दी में ही नजर आती है ।

दो समाजों के विचार-वैमनस्य और एकान्त आग्रह के कारण यह तीर्थ भी लपेटे में आ गया और कानून की शरण में चला गया । पद्मश्री पुरातत्त्वाचार्य मुनिश्री जिनविजयजी ने भी पुरातात्त्विक प्रमाणों के साथ अपने बयान दिये थे । एकान्तवादिता और अपने कदाग्रह के कारण कदम-ब-कदम उच्चतम न्यायालय में पहुँचा ।

कुछ दिनों पूर्व हुए उच्चतम न्यायालय के फैसले / आदेश को लेकर केसरियाजी में जो खुलकर ताण्डव नृत्य खेला गया वह वस्तुतः लज्जाजनक ही है और उसकी भर्त्सना भी करनी चाहिए ।

उच्चतम न्यायालय के आदेशानुसार यह मन्दिर जैन है और राजस्थान सरकार ४ महीन के भीतर ही इसको जैन समाज के अधिकार में दे दे । इस प्रसंग के लेकर कुछ सम्भ्रान्त सज्जनों ने मुझसे अनुरोध किया कि इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण हो तो आप प्रस्तुत करें । स्वाध्याय के दौरान १९वीं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०वीं शती के तीन प्रमाण मुझे प्राप्त हुए हैं ।

तपागच्छीय दीपविजय कविराज बहादुर ने केसरियानाथजी के माहात्म्य को लेकर केसरियानाथ की लावणी विक्रम संवत् १८७५ में लिखी है । यह लावणी हिन्दुपतिपातशाह महाराणा भीमसिंह के राज्य में उदयपुर में लिखी गई है ।[१]

मेवाड़ देश के धुलेवा नगर में आदिनाथजी (केसरियानाथजी) की मूर्ति विराजमान है । यह मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है । त्रेतायुग में लंकापति रावण द्वारा यह मूर्ति पूजित रही । भगवान रामचन्द्र द्वारा लंका पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उस मूर्ति को रामचन्द्र जी पूजनार्थ लंका से अयोध्या ले जा रहे थे । उज्जैन में ही यह मूर्ति अचल हो गई और आगे न बढ़ी फलतः यह मूर्ति वही विराजमान रही । उज्जैन में ही महाराज प्रजापाल की पुत्री मदनसुन्दरी के अत्याग्रह से कुष्ठ रोगी श्रीपाल ने भी पूजा की । इस मूर्ति के न्हवण/प्रक्षाल जल के छिड़काव से श्रीपाल के साथ ७०० कुष्ठ रोगियों का भी कुष्ठ रोग शान्त हो गया ।

कुछ समय बाद यह मूर्ति वागड़ देश के बड़ौद नगर में विराजमान रही । दिल्लीपति मुगल नरेश महाराणाओं से लड़ने के लिए सेना लेकर आया । भयंकर युद्ध हुआ, किन्तु वह विजय प्राप्त न कर सका । वहाँ से मूर्ति गाड़े में रखकर धुलेवा नगर के जंगल में गुप्त रूप से रखी गई । गोवालियों के द्वारा ज्ञात होने पर संघ ने मिलकर इस मूर्ति को प्रकट किया और संघ ने उस वंशजाल से उस मूर्ति को निकाला । मूर्ति कुछ क्षत-विक्षत हो गई थी । उस मूर्ति पर लापसी का लेप किया गया, फिर भी कुछ अंशों में मूर्ति पर निशान रह गए । बड़े महोत्सव के साथ यह मूर्ति मन्दिर बनाकर स्थापित की गई । संवत् १८६३ में मराठा भाऊ सदाशिवराय ने लूटपाट के हेतु मेवाड़ पर हमला किया । उसने सुन रखा था कि जन मानस के आराध्य देव धुलेवानाथ के भण्डार में बहुत द्रव्य है । लूटने के लिए वहाँ आया । अधिष्ठायक भैरुं देव ने घोड़े पर चढ़कर रक्षा की । मराठों के पास विशाल सैन्य था । भयंकर युद्ध हुआ । इस युद्ध में धुलेवाधणी (कालाबाबा) के

१. पद्य संख्या ६१, ६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्त भीलों ने अपने बल और सैन्य के साथ इसमें भाग लिया, भाऊ सदाशिव के घाव लगा और वह भाग गया तथा भीलों के सहयोग से केसरियानाथ कि जीत हुई । धुलेवानाथ, ऋषभदेव केसर से गरकाव रहते हैं इसीलिए केसरियानाथ कहलाते हैं । पश्चात् कवि ने कलियुग में भी ऋषभदेव की अत्यन्त भक्तिपूर्ण स्तवना की है ।

जोधपुर निवासी मरुधररत्न आशुकवि दाधीच पण्डित नित्यानन्दजी शास्त्री ने विक्रम संवत् १९६७ में पुण्यचरित नामक महाकाव्य संस्कृत भाषा में १८ सर्गों में लिखा है । पुण्यचरित वस्तुतः प्रवर्त्तिनी पुण्यश्रीजी का जन्म से लेकर १९६७ तक की घटनाओं का सविस्तर वर्णन है । किसी जैन साध्वी पर लिखा गया संस्कृत में यह प्रथम महाकाव्य है ।

(पुण्यश्री परिचय - जन्म १९१५ गिरासर गाँव, माता-पिता नाम - कुन्दन देवी-जीतमलजी पारख, जन्म नाम - पन्ना कुमारी, दीक्षा - १९३१, गुरु - लक्ष्मीश्रीजी, दीक्षा नाम - पुण्यश्री, स्वर्गवास - १९७६ जयपुर ।)

इस काव्य के सर्ग ११ श्लोक ७ में लिखा है कि-

संवत् १९५८ में प्रवर्त्तिनी साध्वी पुण्यश्रीजी से निवेदन किया गया कि आप सिद्धाचल तीर्थयात्रा के संघ में चलें, किन्तु उन्होंने यह कहकर अस्वीकार किया कि केसरियानाथ तीर्थ की यात्रा करने मुझे जाना है इसीलिए मैं नहीं चल सकती ।

श्लोक १३ से १९ तक में लिखा है कि-

१८ साध्वियों एवं संघ के साथ पुण्यश्रीजी चैत्र सुदी ९, १९५९ के दिन केसरियाजी पधारी और भक्तिपूर्वक केसरियानाथ भगवान कि स्तुति की ।

श्रीमज्जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरचरित्रम्, कर्त्ता - जयसागरसूरि, रचना संवत् - १९९४ पालिताणा, यह संस्कृत का महाकाव्य ५ सर्गात्मक है । प्रकाशन सन् - २००४

(श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि - जन्म १९१३ चौमु गाँव, माता-पिता नाम - अमरादेवी-मेघराजजी बाफना, जन्म नाम - कृपाचन्द्र, यति दीक्षा - १९२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैत्र वदी ३, गुरु-युक्तिअमृत मुनि, दीक्षा नाम कीर्तिसार, क्रियोद्धार - १९४५, आचार्य पद - १९७२ पौष वदी १५, आचार्य नाम - जिनकीर्तिसूरि किन्तु जिनकृपाचन्द्रसूरि के नाम से ही प्रसिद्ध हुए, स्वर्गवास - १९९४ माघ सुदि ११ पालिताणा ।)

सर्ग २, श्लोक ८६-८७ के अनुसार कृपाचन्द्रसूरि संवत् १९५२ में भी धुलेवा तीर्थ की यात्रा के लिए पधारे थे ।

संवत् १९८० में इस काव्य के तृतीय सर्ग श्लोक १८४ से १८८ तक में वर्णन मिलता है कि :-

श्रीकालिकातानगरीनिवासी-सच्छ्रेष्ठि-चम्पाऽऽदिकलालमुख्यः ।
प्यारेसुयुक् लालमहेभ्यकाऽऽदेः, सुखेन संघः समुपागतोऽत्र ॥१८४॥

श्रीसंघपत्याग्रहतो महीयान्, प्रभावकश्रीजिनकीर्तिसूरिः ।
सशिष्यकस्तेन समं चचाल, कर्तुं तदा केसरियाजियात्राम् ॥१८५॥

(युग्मम्)

संघेन सार्धं समुपागतोऽत्र, श्रीमत्प्रभुं केसरियाजिनाथम्;
प्रैक्षिष्ट भक्त्याऽतुलया सशिष्यः, संस्तुत्य मोदं ह्यधिकं समाप ॥१८६॥

मासद्वयं तत्र सुहेतुतोऽस्थात्, विधाय भूयिष्ठपरिश्रमं सः ।
सिताम्बरीयाऽखिलजैनसंघ-स्वामित्वमत्रत्य-सुचैत्यकेऽस्ति ॥१८७॥

एतच्छिलालेखमलब्ध तत्र, यो गुह्य आसीदुपरिस्थितत्वात् ।
तल्लेखमुर्वीपतिरप्यपश्यत्, श्राद्धाऽऽदिलोका अपि ददृशुश्च ॥१८८॥

अर्थात् - कलकत्ता नगर निवासी श्रेष्ठि चम्पालाल प्यारेलाल संघ सहित वहाँ आए थे । संघपति के अत्याग्रह से श्री जिनकीर्तिसूरि (कृपाचन्द्रसूरि) अपने शिष्य मण्डल के साथ केसरियाजी तीर्थ की यात्रा करने के लिए चले । संघ के साथ केसरियाजी पहुँचे । शिष्यों से युक्त आचार्य अतुलनीय भक्ति के साथ प्रभु के दर्शन कर, स्तुति कर प्रमुदित हुए । वहाँ विशेष कारण से २ माह तक निवासी किया । यह तीर्थ श्वेताम्बर अखिल जैन संघ का है और इसका प्रमाण इस चैत्य के भीतर ही है । इसलिए उसको ढूंढने का विशेष प्रयत्न किया, किन्तु वह शिलालेख दृष्टिगोचर नहीं हुआ । विशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिश्रम पूर्वक शोध करने पर वह दीवार पर लगा हुए दृष्टिगत हुआ । उस लेख को महाराणा और संघ ने भी देखा । (उस शिलालेख में यह स्पष्ट अंकित था कि यह तीर्थ श्वेताम्बर जैन संघ का ही है ।)

संवत् १९८० में ही जिनकृपाचन्द्रसूरि ने चार स्तवनों की भी रचना की । एक स्तवन में लिखा है :- गढ़धुलेवा के स्वामी ऋषभदेव कि उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह मूर्ति पहले लंका में विराजमान थी और रावण नियमित रूप से पूजा करता था । पश्चात् यह मूर्ति उज्जैन में स्थापित हुई और श्रीपाल नरेश की कुष्ट व्याधि को दूर किया । उसके पश्चात् यह मूर्ति वागड़ देश के बड़ौद गाँव में विराजमान हुई और वहाँ से धुलेवा आई ।

(ये चारों स्तवन बृहद्स्तवनावली में प्रकाशित हैं । यह पुस्तक संवत् १९८४ में प्रकाशित हुई थी ।)

मुझे यह स्मरण में आता है कि लगभग ४०-४५ वर्ष पूर्व श्री अगरचन्द्रजी नाहटा ने केसरियाजी तीर्थ के कुछ लेख मेरे पास भेजे थे । उनमें से अधिकांश मूर्तियों के लेख विजयगच्छीय (मलधारगच्छ का ही एक रूप) श्रीपूज्यों द्वारा अनेकों मूर्तियाँ प्रतिष्ठित थी जो इस मन्दिर में विद्यमान हैं । विजयगच्छ की दो शाखाएँ थी - एक बिजौलिया कोटा की और दुसरी लखनऊ की । बिजौलिया शाखा के श्रीपूज्यों का आधिपत्य मेवाड़ देश में था, अत: इसी परम्परा के श्रीपूज्यों (श्रीसुमतिसागरसूरि, श्रीविनयसागरसूरि, श्री तिलकसागरसूरि आदि जिनका सत्ताकाल १८-१९वीं शती है) ने प्रतिष्ठाएँ करवाई थी ।

जिस प्रकार दक्षिण भारत के तैलंगानाथक्षेत्र में कुलपाक तीर्थ माणिक्यदेव ऋषभदेव हैं । इस क्षेत्र के आदिवासी जनों के ये माणक दादा के नाम से मशहूर है । तैलंगवासी क्षेत्र के आदिवासी इनको माणकबाबा के नाम से पहचानते हैं । वार्षिक मेले पर ये आदिवासी पूर्व संध्या पर ही आ जाते हैं भक्तिभाव पूर्वक माणकबाबा की अपने गीतों में स्तवना करते हैं, मानता मानते हैं, दर्शन, विश्राम करते हैं और वापिस चले जाते हैं ।

जिस प्रकार अतिशय क्षेत्र महावीरजी मीणा जाति के आराध्य देव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं । मीणालोग ढोक देते हुए जाते हैं, दर्शन करते हैं, उत्कट भक्ति से उनके गुणगान करते हैं, यहाँ तक की मेले के दिवस मीणा जाति का प्रमुख के द्वारा ही रथ का संचालन करने पर रथयात्रा निकलती है ।

उसी प्रकार केसरियानाथजी भी भीलों के कालाबाबा हैं । वे बाबा के दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझते हैं, ढोक देते हुए आते हैं, मिन्नते माँगते हैं, मिन्नते पूर्ण होने पर पुनः ढोक देने आते हैं, अपने जीवन के समस्त कार्यों में कालाबाबा को याद करते हैं । कालाबाबा ही उनका उपास्य देव है । इनके आवागमन, पर, दर्शन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न तो पूर्व में था और न आज है ।

आज से ६०-६५ वर्ष पूर्व मेवाड़ देश और गोरवाड़ प्रदेश में जब कोई भी आपस में मिलते थे तो अभिवादन के तौर पर जय केसरियानाथ की इन शब्दों से अभिवादन करते थे । सारा राजस्थान गुजरात महाराष्ट्र आदि के भक्तों के झुण्ड के झुण्ड यहाँ यात्रार्थ आते थे, केसर चढ़ाते थे, वहाँ प्रतिदिन छटांग, सेर ही नहीं अपितु मणों के हिसाब से केसर चढ़ाते थे । इसी केसर के कारण भगवान आदिनाथ भी केसरियानाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

इस प्रकार हम अनुभव करते हैं कि यह तीर्थ श्वेताम्बर जैन संघ का है । कृपाचन्द्रसूरि चरित्र के अनुसार संवत् १९८० में श्वेताम्बरत्व सूचक शिलापट्ट भी था जिसको महाराणा ने स्वयं देखा था । अतः राजस्थान सरकार से निवेदन है कि नियमानुसार इसका अधिकार एवं व्यवस्था श्वेताम्बर जैन समाज को प्रदान कर अपने कार्यकाल को सफल बनावें ।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org